International Journal of Advanced Educational Research
ISSN: 2455-6157; Impact Factor: RJIF 5.12
www.educationjournal.org
Volume 1; Issue 4; July 2016; Page No. 62-64

पत्रिकाओं की उत्तरजीविता और संपादकः कादम्बिनी एक विश्लेषणात्मक अध्ययन

पूजा डबास

Mass Communication, NIILM university kaithal, Haryana, India

सारांश

हिंदी पत्रिकाओं के इतिहास में हम देखते हैं कि पत्रिकाओं की उत्तजीविता पर उसके संपादकों का खासा असर पड़ता है। उदाहरण के तौर पर सबसे पहले नाम आता है हिंदी की प्रसिद्ध पत्रिका धर्मयुग जिसके संपादक रहे धर्मवीर भारती और दूसरी पत्रिका साप्ताहिक हिंदुस्तान जिसके संपादक रहे रघुवीर सहाय। दोनों संपादकों के जाने के बाद ये दोनों ही पत्रिकाएं कालकलित हो गयी। आमतौर पर सामाजिक–सांस्कृतिक पत्रिकाओं की विदायी उनके बड़े संपादकों के साथ ही होती रही है। पत्रिकाओं के शरीर और आत्मा दोनों का निर्धारण उसके संपादक करते रहे। अक्सर पत्रिकाओं को मिलने वाले संसाधनों की कमी या फिर बाजार की अर्थव्यवस्था में सामाजिक–सांस्कृतिक पत्रिकाओं के लिए पैसे खर्च करने की मालिकों की रुचि के समाप्त हो जाने को ठहरा दिया जाता रहा है। पर तकनीकी पिछड़ेपन के दौर में भी बिना किसी खास मार्केटिंग प्रयास के पत्रिकाएं मुनाफा कमा रही थी। क्या खास तौर पर पत्रिका के लिए बड़े संपादकों की नियुक्ति के अभाव ने इस हालात को जन्म दिया है या फिर संपादकों में सूचना विस्फोट के इस दौर में ठेठ हिंदी पाठकों के रुचि की नब्ज पर से उनकी कमजोर पकड़ ने चीजें तय की हैं। इन सभी में कादम्बिनी एक रोचक उदाहरण है क्योंकि हिंदी सामाजिक–सांस्कृतिक पत्रिका में यह अपने ढंग की अकेली पत्रिका रह गयी है। हर संपादक के काल में इसमें बड़े बदलाव देखने को मिले हैं। समूह संपादक की अवधारणा आने के साथ कहने को तो इस काल में दो संपादक हैं मृणाल पांडे और शशि शेखर पर कार्यकारी संपादकों की एक पूरी फेहरिस्त है जिनकी रुचियों और संस्कारों का असर इसके सार चयन पर दिखता है। यह हमें तुलनात्मक अध्ययन के लिए रोचक अवसर प्रदान करता है।

मुख्य शब्दः धर्मयुग, साप्ताहिक हिंदुस्तान, सामाजिक–सांस्कृतिक।

प्रस्तावना

यह मास मीडिया के डिमैसिफिकेशन का दौर है। यानी रिच मार्केट की तरह ही पाठक श्रोता–दर्शक भी मोनोलिथिक नहीं रह गए हैं। अपनी निजी रुचियों के अनुसार पाठक या श्रोताओं का विभाजन हो चुका है। अब वो दिन गए जब एक ही अखबार या पत्रिका को परिवार के सारे लोग पढ़ लिया करते थे। या फिर रेडियो–टेलिविजन के कार्यक्रम बनाते समय निर्माता के सामने श्रोता–दर्शक बोलने से एक आम या मोनोलिथिक (एक ठोस अखंडित शिला) छवि उभरती थी। यानी किसी कार्यक्रम को सभी द्वारा पसंद किया जाए ऐसा मानकर उसका निर्माण किया जाता था। अब हर मीडिया उत्पाद में पाठक, श्रोता या दर्शक के उम्र, रुचि व संस्कार के खांचे के हिसाब से विभाजन तय किया जाता है। 'पोंटिन व जैसन द्वारा 2009 में किए गए शोध में पाया कि इंटरनेट के आने से पत्रकारिता के आयाम बदल गए हैं। वेब पत्रकारिता ने प्रिंट मीडिया के समक्ष नई चुनौतियां खड़ी कर दी हैं पर आज भी मुद्रित अक्षर को पढ़ने की दिलचस्पी पाठकों में कम नहीं हुई है। यही कारण है कि प्रिंट मीडिया ने अपने अस्तित्व को बरकरार रखने के लिए अपने में बदलाव किए हैं।' [1]

प्रिंट की दुनिया में पत्रिकाओं में डिमैसीफिकेशन का काम कुछ ज्यादा तेजी से हुआ। बाजार में खास उम्र व रुचि के हिसाब से अलग पत्रिकाएं आने लगी। हिंदी पत्रकारिता में अभी भी एक अवरोध (ड्रैग) यानी अधिक से अधिक पाठकों को एक खास उत्पाद के लिए बांधने का लालच रहा है। 'विभिन्न खांचों में बंटे पाठकों को एक साथ बांधनें में जिसकी भूमिका सबसे अधिक होती है वह संपादक है क्योंकि वहीं सबके बीच का एक महत्तम समापवर्तक निकालता है। हिंदी पत्रिका के संपादकों के सामने इंटरनेट के इस दौर में चुनौतियां बढ़ी है।'[2] उसके सामने तेजी से विस्तार करने के बीच अपनी ठोस पहचान को समेटकर रखने की चुनौती है। उसे पाठकों की संख्या में प्रसार करने के साथ ही अपने लिए खास पाठक तैयार करने हैं। **'इज्राइल लाइट** (1960) में किए गए शोध में यह पाया कि विज्ञान लेखन किसी भी समाचार–पत्र या पत्रिका के लिए बहुत महत्वपूर्ण विधा है। लोगों में विज्ञान के प्रति बढ़ती रुचि को देखते हुए समाचार पत्रों में इसकी मांग बढ़ी है।'[3]

शोध का महत्व

हिंदी पत्रिकाओं के भविष्य के लिए विषय का अध्ययन प्रांसगिक है जानकर इसे शोध का विषय चुना गया है।

शोध के उद्देश्य

कादम्बिनी के अध्ययन के जरिये ठेठ हिंदी के सामाजिक–सांस्कृतिक पत्रिका के लिए एक सफल मॉडल की तलाश।

शोध विधि

कोई भी पत्रिका कथ्य और रूप दो प्रकार में विभाजित की जाती है। चूंकि यहां बात पत्रिका में परोसी सामग्री की जा रही है तो यह पूरा शोध मूलतः कथ्य पर आधारित रहा यानी कनटेंट एनालिसिस। हिंदी पत्रिकाओं में आरंभ में साहित्य का बोलबाला रहा। इन पत्रिकाओं का पाठक वर्ग प्रभावशाली तो था परंतु संख्या के लिहाज से व्यवसाय व साख दोनों से ही उतना असरकारी नहीं था। लिहाजा एक समय में बड़े प्रकाशन संस्थानों की ओर से निकाली जाने वाली साहित्यिक पत्रिकाएं भी एक–एक कर बंद हो गयी। 'व्यवसाय व साख के हिसाब से ज्यादा असरकारी व बड़े हस्तक्षेप वाले प्रकाशनों की तलाश में 'रविवार' व 'माया' जैसी पत्रिकाएं तो निकली मगर बाजार की मार से वे ज्यादा समय तक नहीं बची। उनके प्रभावशाली संपादकों के अवसान के साथ ही पत्रिकाओं का भी अवसान प्रारंभ हो गया। उदारीकरण व वैश्वीकरण के दौर में हिंदी पत्रिकाओं के सामने उपस्थित होने वाली चुनौतियों में और ज्यादा बढ़ोत्तरी हुई।'[4] पाठकों के सामने उपयोगिता, रोचकता व

मनोरंजन के लिहाज से उनके सामने दुनियाभर के स्रोत उपलब्ध थे। नए पाठकों को अपनी ओर मोड़ने या फिर पुराने पाठकों की निष्ठा को अपने साथ जोड़े रखने में उन्हें अच्छी खासी स्पर्धा का सामना करना पड़ रहा था। साथ ही पत्रिका के संपादकों, पत्रकारों के सामने हिंदी के बुद्धीजीवी वर्ग की जमात से आने के कारण उनके सामने हिंदी के पाठकों के रहबरी की जिम्मेदारी भी थी। उसे ज्ञान, रुचि व संस्कार के मामले में हिंदी पाठकों को एक नये स्तर पर ले जाना था, पर साथ ही उसे अपनी पहचान को इंटरनेट के जरिए होने वाले सूचनाओं के प्रवाह व वहां उपलब्ध विकल्पों की भीड़ में अपनी पहचान को गुम होने के खतरे से भी बचाना था।

मृणाल पांडे के दौर में कादम्बिनी पत्रिका में बदलाव की दृष्टि से 2006 का साल सबसे महत्वपूर्ण साबित रहा। चूंकि यही वह साल था जिसमें डिजाइन की दृष्टि से पत्रिका को छोटे से बड़ा कर दिया गया। मुख्य कॉपी संपादक अरुण कुमार जैमिनी के अनुसार डिजाइन में यह बड़ा बदलाव विज्ञापन को लेकर हुआ था। स्थायी स्तंभों की बात हो या फिर लेख, कहानियां, कविताएं हर दृष्टि से बदलाव सामने आए जिसे कुछ पाठकों ने बखूबी सराहा तो कुछ ने और बेहतर बनाने के सुझाव भी दिए। हिंदी साहित्य में अपनी विशिष्ट पहचान बनाने वाली इस पत्रिका की खासियत यही रही है कि मृणाल पांडे ने इसे हर उम्र के पाठक वर्ग से जोड़ने का प्रयास किया। एक ओर जहां शब्दकोष को बढ़ाने और नए–नए शब्दों के अर्थ को समझाते हुए जहां इसके स्थायी स्तंभ में शब्द–संपदा, शब्द–चर्चा जैसे स्तंभों को स्थान दिया गया। वहीं युवाओं को भी कविताएं और कहानियों जैसे स्तंभों के जरिए अपनी रचनात्मकता दिखाने का पूरा अवसर दिया गया। इसी के साथ पत्रिका के अंतिम पृष्ठ पर 'चित्र और रचना' के माध्यम से एक खुला मंच तैयार किया गया जिसमें किशोरों से लेकर बड़ों तथा बुजुर्गों तक सभी को अपनी रचनात्मकता दिखाने का मौका मिला। इसके अंतर्गत एक चित्र और उसके शीर्षक के माध्यम से हर वर्ग को इससे जुड़ने के लिए प्रेरित किया गया जिसमें वह अपनी कल्पनाशीलता, भाषा और शैली का नयापन, सजगता, संलिप्तता और मार्मिकता को चरितार्थ करते हुए एक कविता लिखते।

वहीं शशि शेखर के दौर में सहयोगी संपादक के तौर पर राजीव कटारा की माने तो उन्होंने इसी साहित्यिक और सांस्कृतिक पत्रिका माना जिसमें सामाजिक का पुट सांस्कृतिक में ही निहित है। उन्होंने अपने पाठक वर्ग के वर्गीकरण को स्पष्ट किया और कहा कि 30 के बाद के पाठक के लिए इसमें सामग्री परोसी गई है। उन्होंने पत्रिका के मूल में कोई खास बदलाव नहीं किया। अपने हिंदी के लेखकों के साथ उन्होंने इस अंग्रेजी के लेखकों को भी इस पत्रिका से जोड़ने का प्रयास किया। मसलन चेतन भगत आदि।

आगे चलकर कार्यकारी संपादकों की आजादी शशि शेखर के दौर में थोड़ी और बढ़ी जिसकी वजह शशि शेखर की रुचि साहित्य और कला से कहीं अधिक खबरों में थी। मृणाल पांडे के दौर में केवल कादम्बिनी ही नहीं अखबार में भी बड़े बदलाव सामने आए। पूरी कोशिश उस ठप्पे को हटाने की थी जिसमें हिंदी प्रकाशनों को रुचियों, संस्कार और साज–सज्जा के हिसाब से पिछड़ा हुआ माना जाता था। साथ ही इस बात की भी कोशिश की गई की हिंदी प्रकाशनों को कमाउ पूत न होने की वजह से होने वाले सौतले व्यवहार से बाहर निकाला जाए। विज्ञापन विभाग और डिजाइनिंग विभाग का संपादकीय विभाग के साथ मजबूत आत्मीय संबंध बनाने पर जोर दिया गया। विज्ञापन कैसे आएंगे, किस तरह के विज्ञापन के लिए कौन सी सामग्री आएगी, प्रबंधन सूत्र के हिसाब से उत्पाद के लिए पैकेजिंग के आकर्षक बनाने की तर्ज पर पत्रिका को आकर्षक रूप से पाठकों और बाजार के सामने परोसने की कवायद की गई। इसी क्रम में कदाम्बिनी की शख्सियत भी बदली। पहले जहां कादम्बिनी खास लोगों के लिए गंभीर पठन सामग्री वाली पत्रिका मानी जाती थी वहीं मृणाल पांडे के दौर में उस छवि से बाहर निकलकर युवा वर्ग और उसकी रुचियों यानी की बाजार के हिसाब से उस सेंगमेंट यानी 18 से 50 के वर्ग के रुचि के अनुरूप सामग्री को समेटने की कोशिश की गई। जिनके पास पैसा था या जो खरीदारों का सबसे बड़ा समूह था।

तालमेल बिठाने की इस कोशिश में अधिकतर कार्यकारी संपादक अखबार में पहले से काम कर रहे लोगों को बना दिया गया। खास कादम्बिनी की शख्सियत और जरूरत के हिसाब से किसी नए शख्स को ढूंढने व उसे नियुक्त करने का प्रयास नहीं किया गया। कार्यकारी संपादकों की शख्सियत ने कादम्बिनी के कलेवर को प्रभावित किया। विष्णु नागर को रंगों की वो दुनिया पसंद नहीं थी जिसमें सबकुछ गुलाबी–गुलाबी हो। उनके रंग अवस्थी जी से अलग थे और साथ ही रुचियां भी। भले दोनों ज्योतिष पर लिख रहे हों पर दोनों की दिशाएं अलग थी। पर यहां एक बात अवश्य थी कि कोशिश ज्यादा से ज्यादा पाठकों तक पहुंचने की थी। चाहे वह विषयों का विस्तार लेकर हो या फिर कादम्बिनी से जुड़े बड़ी हैसियत वाले लेखकों की फेहरिस्त में विस्तार देकर। इस समय कादम्बिनी का आवरण बरसात के बाद दिखने वाली जमीन की तरह था जिसमें सभी पौधे अपनी–अपनी उर्जा के साथ आगे बढ़ने को उतारू थे। आवरण कथा पर अपनी ओर ध्यान आकर्षित करते शीषर्कों की होड़ दिखती थी जो उसकी एक ठोस छवि को थोड़ी कमजोर करती थी।

आगे के समय में संपादक के तौर पर शशि शेखर और सहयोगी संपादक में बतौर राजीव कटारा के दौर में आवरण पृष्ठ पर ध्यान आकर्षित करने वाले शीषर्कों की आपाधापी नहीं दिखती है। यहां कोशिश मीडिया के नए चलन के हिसाब से पत्रिका के लिए खास समर्पित पाठक वर्ग तलाशने की रही है जिसकी रुचियों के विस्तार का दायरा बड़ा हुआ है ताकि उसमें बाजार की भी रुचि हो।

कहानियों की बात करें तो कहानियां नए–पुराने दोनों स्रोतों से हैं। एक ओर जहां पाठकों की रुचि के लिहाज से प्रेमचंद, हरिशंकर परसाई सरीखे सदाहरित लेखक हैं, तो दूसरी ओर ओहेनरी, मोपासा, लियो टॉलस्टॉय जैसे विदेशी लोकप्रिय कहानीकारों कहानियों का अनुवाद भी है। साथ ही समकालीन कहानीकारों की कहानियों को भी इसमें जगह दी गई है। जैसे कमलेश्वर की कहानियां, यशंवत व्यास आदि। कहानियों की श्रेणी में ही नई पौध की कहानीकारों को भी जगह दी गई। युवा रचनाकारों के लिए कहानी प्रतियोगिता का भी आयोजन किया गया है। '2006 नवंबर के बाद 'कादम्बिनी' में आमूल–चूल परिवर्तन देखने को मिलता है। कादम्बिनी का रूप और उसके मिजाज दोनों में एक नई किस्म की तेजी और ताजगी देखने को मिलती है।' [5] यह सब कथ्य सामग्री के चयन और उसकी प्रस्तुति दोनों में ही साफ झलकती है। कहानी पढ़ते समय पाठकों को उससे जोड़ने के लिए उसमें रंगों, चित्रों और रेखांकनों का भरपूर उपयोग किया गया है। इसे अन्य साहित्यिक पत्रिकाओं हंस, ज्ञानोदय आदि के साथ देखकर आसानी से समझा जा सकता है। कहानी को अपने आप में पाठ्य सामग्री होने के साथ–साथ उसे नए हिंदी पाठकों तक ले जाने के लिए बड़े नामों को इससे जोड़ने का जरिया भी बनाया गया। इसी क्रम में 2006 में जीवन के राजनीति, सिनेमा और कला की दुनिया के नामचीन लोगों की पसंद की कहानियों को उनके चित्र और टिप्पणी के साथ भी छापा गया है। 'कहानियों के इस स्तंभ में हिंदी के श्रेष्ठ कथाकारों का सहयोग लिया गया। प्रेमचंद की 125वीं जयंती के अवसर पर उनकी कुछ श्रेष्ठतम कहानियों का चयन समाज के विभिन्न क्षेत्रों के समादृत लोगों से करवाया गया।'[6] इस क्रम की शुरुआत भारत के प्रतिष्ठान वैज्ञानिक तथा भारतीय औद्योगिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद् के महानिदेशक डा. रघुनाथ अनंत माशेलकर द्वारा चयनित कहानी 'नमक का दारोगा'

से की गई। इसी क्रम में प्रसिद्ध समाजशास्त्री पूरन चंद्र जोशी द्वारा चयनित प्रेमचंद की कहानी 'दो बैलों की कथा', सुप्रसिद्ध पत्रकार राजकुमार केसवानी द्वारा चयनित कहानी 'कफन', प्रसिद्ध अर्थशास्त्री गिरीश मिश्र द्वारा 'पछतावा' और सुप्रसिद्ध गायिका शुभा मुद्गल द्वारा 'गमी' और फीचर तथा डाक्यूमेंट्री फिल्मों के सुप्रसिद्ध निर्देशक प्रकाश झा द्वारा 'बूढ़ी काकी' प्रस्तुत की गई। रेखांकनों की बात की जाए तो कई रंगीन तो कई काले–सफेद चित्र भी बनाए गए जिससे पठनीयता और अधिक प्रभावित हो सके। 'उदाहरण के तौर पर जुलाई 2006 के अंक में राज कुमार सरकार द्वारा बनाए गए चित्रांकन के प्रयोग से प्रेमचंद की कहानी 'गुल्ली–डंडा' में मानो जान सी पड़ गई।' [7] हाथ से बनाया गया ये चित्र लेख को एक नई पहचान ही नहीं देता बल्कि पाठकों में भी लेख को पढ़ने में उत्सुकता जगाता है।

शशि शेखर के दौर में भी नए–पुराने लेखकों की कहानियां मौजूद हैं पर यहां थोड़ा रुचि में बदलाव दिखता है। पाठकों को उन कहानीकारों के बोझ से नहीं दबाया जाता जिनके नाम के आतंक से वह पहले से त्रस्त हैं। उनकी रुचि और समय को देखते हुए कहानीकारों का चयन किया गया है। 'विदेशी लेखकों की कहानियों के अनुवाद कम हैं मगर गायब नहीं जैसे गैब्रियल गार्सिया मार्खेज की कहानी–'बिजली जैसे कि पानी', जुलाई 2010।'[8] वहीं एक ओर कृष्ण चंदर की कहानी 'थाली का बैंगन', नवंबर 2014 देखने को मिलती है तो दूसरी ओर क्षमा शर्मा की 'चीफ गेस्ट' फरवरी 2013, कामना सिंह की आपबीती जुलाई 2014, सुरेश उनियाल की 'सिमल का पेड़' अगस्त 2011, कृष्णा सोबती की 'टीलो ही टीलो' नवंबर 2010, कानन झींगन की 'झरोखा–अनउगी झील', जून 2009, हिंदी रंगमंच के मजबूत स्तंभ थे जालानः प्रयाग शुक्ल, अशोक सेकसरिया की 'मोटर पार्ट्स का एजेंट' जनवरी 2015, अवधेश अमन की 'मुझे क्षमा नहीं करोगे', जुलाई 2015 देखने को मिलती है। यानी कि नए–पुराने यहां हर किस्म के लेखक मौजूद हैं।

मृणाल पांडे के दौर में आवरण कथाओं में शीर्षकों के लिहाज से विविधता की झलक देखने को मिलती है। यहां आवरण कथा के विषय चयन में ज्ञान और रुचि ज्यादा निर्णायक भूमिका निभाता है। शुरुआती दौर में आवरण कथा किसी बड़ी शख्सियत से उस विषय पर लिखवाया गया गंभीर आलेख होता है जो उसके हर पहलू को छूने की कोशिश करता है। बाद के दौर में उनके नेतृत्व में हिंदुस्तान प्रकाशन समूह के सभी प्रकाशनों की सामग्री और सज्जा दोनों ही स्तरों पर एक नई सोच देखने को मिलती है। पाठकों के दायरे को विस्तार के मद्देनजर आवरण कथा विस्तार पाती है। यहां उस विषय पर ज्यादा से ज्यादा जानकारी अलग–अलग बिंदुओं से देने की चेष्टा की जाती है। फिर कोशिश कम से कम श्रम में करने में होती है। इसलिए पहले से उपलब्ध अन्य पत्रिकाओं में उपलब्ध सामग्री और संस्थान में मौजूद जानकार लोगों से उस विषय पर लिखवाने में जोर होता है। 'इसका नजारा हमें मार्च 2007 के अंक में देखने को मिला जिसके अंतर्गत प्रमोद जोशी की 'हंसी के कई रंग' आवरण कथा में देखने को मिलता है।' [9] वहीं आवरण कथा को शशि शेखर के दौर में देखा जाए तो राजीव कटारा के कार्यकारी संपादक की भूमिका में पत्रिका पूरी तरह से बदली नजर आती है। अब महज आवरण कथा से ही उसकी छवि निर्धारित होती है। निष्कर्ष तौर पर हम कह सकते हैं कि संपादकों के बदलने से पत्रिका की परोसी जाने वाली सामग्री में आमूल–चूल परिवर्तन देखने को मिलता है।

संदर्भ सूची

1. Pontin, Jason, May 2009 A Manifesto: newspapers and magazines won't vanish. But they will change, Technology Review. 2009; 112(3):8.
2. इंडियन कम्यूनिकेशन थ्योरी एंड प्रैक्टिसः प्रो0 ओमप्रकाश सिंह, अध्याय 3, पृ सं 30, वाणी प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली, 2012।
3. Israel Light. Science Writing: Status and Needs Journalism & Mass Communication Quarterly, 1960; 37(1):53-60.
4. पत्रकारिता का अवलोकनः एन.सी.पंत, अध्याय 2 , पृ सं 30, अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली, 2007।
5. कादम्बिनी 2006, नवंबर अंक, पृ सं 24, संपादक मृणाल पांडे।
6. कादम्बिनी 2006, जून अंक, पृ सं 32, संपादक मृणाल पांडे।
7. कादम्बिनी 2006, जुलाई अंक, पृ सं 40, संपादक मृणाल पांडे।
8. कादम्बिनी 2010, जुलाई अंक, पृ सं 28, संपादक शशि शेखर।
9. कादम्बिनी 2007, मार्च अंक, आवरण पृष्ठ, संपादक मृणाल पांड।
10. www.taylorandfrancis.com
11. www.iarigai.com
12. www.mercatomet.com
13. www.tandfonline.com
14. http://jmq.sagepub.com
15. http://www.theguardian.com/
16. www.buzzle.com